UGC - CARE LISTED
ISSN: 0974 - 8946

अनुसन्धान-प्रकाशन-विभागीया त्रैमासिकी शोध-पत्रिका

शोध-प्रभा

(A Refereed & Peer-Reviewed Quarterly Research Journal)

44 वर्षे तृतीयोऽङ्कः (जुलाईमासाङ्कः) 2019

प्रधानसम्पादकः
प्रो.रमेशकुमारपाण्डेयः
कुलपतिः

सम्पादकः
प्रो.शिवशङ्करमिश्रः
शोधविभागाध्यक्षः

सहसम्पादकः
डॉ.ज्ञानधरपाठकः
शोधसहायकः

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(राष्ट्रियमूल्याङ्कन-प्रत्यायनपरिषदा 'ए' श्रेण्या प्रत्यायितः, मानितविश्वविद्यालयः)
नवदेहली-16

हिन्दी विभाग

8. संस्कृत कविता का प्राचीन एवं नवीन परिदृश्य	**प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र**	62-77
9. भारतवर्ष में लेखनकला का उद्भव एवं विकास	**प्रो. शिवशङ्कर मिश्र**	78-85
10. मम्मटीय काव्यप्रयोजन : एक समीक्षा	**डॉ. मुकेश कुमार मिश्र**	86-101
11. वास्तु के वैदिक सिद्धान्त एवं वर्तमान में वास्तुकला की प्रासंगिकता	**डॉ. नीलम त्रिवेदी**	102-114
12. अनेकान्तवाद : एक सापेक्षात्मक व्यावहारिक दृष्टिकोण	**डॉ. अनुभा जैन**	115-123
13. आधुनिक संस्कृत कविताओं में स्त्री-जीवन	**डॉ. कमलेश रानी**	124-130
14. आधुनिक संस्कृत कविताओं में लोकजीवन	**डॉ. राजमङ्गल यादव**	131-138

English Section

15. Body is a Temple	**Dr. Sumitra Bhat** & **Smt. Uma K.N.**	139-144
16. Bankimchandra Chattopadhyay and the Concept of Dharma	**Sujay Mondal**	145-152

UGC - CARE Listed
जुलाई-सितम्बर, 2019

शोधप्रभा
वर्ष: 44, तृतीयोऽङ्क

अनेकान्तवाद : एक सापेक्षात्मक व्यावहारिक दृष्टिकोण

डॉ० अनुभा जैन*

जैनागमों के अनुसार तीर्थङ्करों ने अपनी आध्यात्मिक साधना के परिणाम स्वरूप सभी जीवों के प्रति उदारता और करुणा का अनुभव किया और स्वयं के आन्तरिक अनुभवों पर आधारित अपने आध्यात्मिक उपदेश दिए। ज्ञान किसी सीमा को नहीं जानता। यही कारण है कि वास्तविकता को इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त नहीं किया जा सकता। वास्तविक ज्ञान को मात्र अनुभवों के आधार पर जाना जा सकता है, बाह्य अनुभवों के आधार पर नहीं। आत्म-ज्ञान सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है। जैन दर्शन का मूल आधार सापेक्षात्मक व्यावहारिक दृष्टिकोण ही है।

जैन दर्शन धार्मिक सहिष्णुता नैतिक शुद्धता, आध्यात्मिकता एवं सद्भाव पर आधारित हैं। जिनशासन धर्म को नैतिक अभ्यास के विज्ञान के रूप में मानता है। जैनदर्शन के अनुसार प्रत्येक आत्मा ईश्वरत्व प्राप्त कर सकता है। सर्वोच्च आध्यात्मिक व्यक्तित्व द्वारा अपनी आन्तरिक शुद्धता और पूर्णता को अपने आचरण में ग्रहण किया जा सकता है। आत्म-प्राप्ति की प्रक्रिया में सर्वप्रथम एवं मूलभूत आवश्यकता जीवन में तर्कसंगत दृष्टिकोण को अपनाना है। जैनदर्शन व्यावहारिक नैतिक अनुशासन का एक निश्चित पाठ्य-क्रम एवं उच्चतम सत्य का चिन्तन है।

सर्वथा एकान्तवादी मानते हैं कि वस्तु निरपेक्ष एकान्त है, किन्तु जैन दर्शन में कोई भी वस्तु मिथ्या एकान्त के रूप नहीं है। वह सापेक्ष एकान्त है और सापेक्ष एकान्तों के समूह का नाम ही अनेकान्त है, उस स्थिति में उसे और तादात्म्यक वस्तु को मिथ्या नहीं कहा जा सकता। जब वस्तु का एक धर्म दूसरे धर्म की अपेक्षा नहीं रखता, उसका तिरस्कार कर देता है तो वह मिथ्या कहा जाता है, परन्तु जब वह उसकी अपेक्षा रखता है तो उसका तिरस्कार नहीं करता तब वह सम्यक् माना जाता है। वास्तव में वस्तु निरपेक्ष एकान्त नहीं है। प्रस्तुत शोधपत्र में वस्तु के निरपेक्ष एकान्तवाद को मिथ्या बताते हुए जैनदर्शन के मतानुसार यह सिद्ध करने का प्रयास

** सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
गुरु नानक गर्ल्स कॉलेज, यमुनानगर (हरियाणा)

किया गया है कि वस्तुसापेक्ष अनेकान्त रूप है।

जैन सिद्धान्तानुसार वास्तविक सत्य का मात्र अनुभव किया जा सकता है। लेकिन भाषा के साथ इसे पूर्णरूप से व्यक्त करना सम्भव नहीं है। फिर भी प्रयत्न एवं उचित कर्म के मध्यम से उन्हें अनुभव किया जा सकता है। जैन चिन्तकों ने जैन अनुयायियों को 'स्थात् पद की' योग्यता के साथ और निरपेक्ष वास्तविकता को समझने के ही दोनों को एक साथ स्वीकार करने का उपदेश दिया है। अनेकान्तमयी वस्तु का कथन करने की पद्धति स्याद्वाद है। किसी भी एक शब्द का वाक्य के द्वारा सम्पूर्ण वस्तु का युगपत् कथन करना अशक्य होने से प्रयोजनवश कभी एक धर्म को मुख्य करके कथन करते हैं और कभी दूसरे को। मुख्य धर्म को सुनते हुए श्रोता को अन्य धर्म भी गौण रूप से स्वीकार होते रहें। उनका निषेध न होने पाए। इस प्रयोजन से अनेकान्तवादी अपने प्रत्येक वाक्य के साथ स्यात् या कथंचित् पद का प्रयोग करता है। स्याद्वाद का लक्षण जो नियम का निषेध करने वाला है, निपात से जिसकी सिद्धि होती है, जो सापेक्षता की सिद्धि करता है वह 'स्यात्' शब्द है।[1] सर्वथा रूप से-सत् ही है, असत् ही है इत्यादि रूप से प्रतिपादन के नियम का त्यागी और यथादृष्ट को जिस प्रकार से वस्तु प्रमाण प्रतिपन्न है उसको अपेक्षा में रखनेवाला जो स्यात् शब्द है वह एक न्याय अर्थात् मत में है, दूसरे के मत में नहीं है।[2] अनेकान्त भी प्रमाण और नय साधनों को लिए हुए अनेकान्त स्वरूप है, प्रमाण की दृष्टि से अनेकान्त स्वरूप दृष्टिगत होता है और विवक्षित नय की अपेक्षा से अनेकान्त में एकान्त रूप सिद्ध होता है।[3]

धर्मी अनेकान्तरूप है क्योंकि वह अनेक धर्मों का समूह है परन्तु धर्म अनेकान्त रूप कदाचित् भी नहीं क्योंकि एक धर्म के आश्रय अन्य धर्म नहीं पाया जाता। इस प्रकार अनेकान्त भी अनेकान्त रूप है अर्थात् अनेकान्तात्मक वस्तु अनेकान्त रूप भी है और एकान्त रूप भी है। स्यात् अर्थात् कथंचित् या विवक्षित प्रकार से अनेकान्त रूप भी है और एकान्त रूप भी है स्यात् अर्थात् कथंचित् या विवक्षित प्रकार से अनेकान्त रूप से वाद करना, प्रतिपादन करना स्याद्वाद है[4] जिसके द्वारा प्रतिपादन

---

1. न्यायचक्र बृहद्, 251 : णियमणिसेदूणसीलो णिपादणादो य जोहु खलु सिद्धो। सो सियसद्दो भणियो जो सावेक्खं पसाहेदि।
2. स्वयम्भूस्तोत्र, 102 : सर्वथा नियमत्यागी यथादृष्टमपेक्षक: स्याच्छब्दस्तावकेन्याये नान्येषामात्मविद्विषाम्।
3. स्वयम्भूस्तोत्र, 103 : अनेकान्तोऽप्यनेकान्त: प्रमाणनयसाधान:। अनेकान्त: प्रमाणात्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात्।
4. समयसार, तात्पर्य वृति, स्याद्वाद अधिकार 513.17: स्यात्कथंचित् विवक्षितप्रकारेणानेकान्तरूपेण वदनं वादो जल्प: कथनं प्रतिपादनमिति स्याद्वाद:।
5. स्वयम्भूस्तोत्र, टीका, 134, 264: उत्पाद्येत् उत्पाद्यते येनासौ वाद: स्यादिति वादोवाचक: शब्दो यस्यानेकान्तवादस्यादौ स्याद्वाद:।

किया जाए वह वाद कहलाता है स्याद्वाद का अर्थ है वह वाद जिसका वाचक शब्द स्यात् हो अर्थात् अनेकान्तवाद है।[5] विवक्षा को सही व उचित प्रकार से स्वीकार करना ही स्याद्वाद की सत्यता है। आत्मा के कर्तृत्व-अकर्तृत्व की विवक्षा को यथार्थ मानना ही स्याद्वाद को यथार्थ मानना है।[1] स्याद्वाद को प्रमाण्य में हेतु देते हुए कहा गया है कि शब्द को सुनने का कार्य वाच्य पदार्थ का ज्ञान है। उसके कारण ही स्याद्वाद की स्थिति है। इसलिए भगवत्प्रवचन रूप शाब्दिक स्याद्वाद उपचार से प्रमाण है पर तज्जनिक ज्ञान रूप स्याद्वाद चक्षु आदि ज्ञानवत् मुख्यत: प्रमाण है, क्योंकि उसकी हेतु प्रमा की प्रमिति है।[2]

जैन दर्शन के अनुसार वास्तविक सत्य को जानना अत्यन्त जटिल है। जैनाचार्यों के मत में कोई भी पूर्ण सत्य को एक ही बार में वर्णित नहीं कर सकता। यह वास्तविक ज्ञान केवल सर्वज्ञ द्वारा ही समझा जाता है। अनेकान्तवाद जैन धर्म को अधिक विस्तृत तार्किक संरचना प्रदान करता है। एक ही वस्तु के सम्बन्ध में कई दृष्टिकोणों की सम्भावना रहती है जो एक व्यावहारिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें वस्तु को अपने स्वयं के पदार्थ, स्थान, समय और रूप के एक बिन्दु से सकारात्मक रूप से वर्णित किया जा सकता है और नकारात्मक रूप से भी। इसीलिए जैन विचारकों ने 7 नय के सिद्धान्त में तर्क दिए। आज की इस तनावपूर्ण समय में सौहार्द्रपूर्ण एवं शान्तिमय वातावरण के लिए स्याद्वाद की महती आवश्यकता है। स्याद्वाद के सापेक्ष व निरपेक्ष अर्थ-प्रमाण व नय के विषय परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा से हैं अथवा एक नय का विषय दूसरी नय के विषय की अपेक्षा करता है, इसी को सापेक्ष तत्त्व कहते हैं। निपरेक्ष तत्त्व इससे विपरीत है।[3] जैन मत में वस्तु अनेकान्तस्वभावी है। इसलिए द्रव्यार्थिक नय से द्रव्यरूप में नित्यत्व घटित होता है। पर्यायार्थिक नय से पर्यायरूप में अनित्यत्व घटित होता है। दोनों ही द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक नय परस्पर सापेक्ष है।[4]

'स्यात्' पद की प्रधानता के द्वारा उपनय ही व्यवहार का जनक है, किन्तु जब निश्चयनय के द्वारा उपनय प्रलय को प्राप्त करा दिया जाता है तब निश्चय ही

---

1. समयसार, प0 जयचन्द, 344,413
2. न्याय0 वि0 3,89, 364: स्याद्वाद: श्रवणज्ञान हेतुत्वाच्चक्षुरादिवत्। प्रमा प्रमितिहेतुत्वात्प्रामाण्यमुपगम्यते।
3. नयचक्रबृहद् 250: अवरोप्परसावेक्खं ण्यविसयं अह पमाण विसयं वा तं सावेक्खं तत्तं णिखेक्खं ताण विवरीयं।
4. प0 का, ता0 वृ0 18, 38,17: जैनमते पुनरनेकस्वभावं वस्तु तेन कारणेनद्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यरूपेण नित्यत्वं घटते पर्यायार्थिकनयेन पयार्यरूपेणानित्यत्वं च घटते। तौ च द्रव्यपर्यायौ परस्परं सापेक्षौ।
5. न0 च0 श्रुत, 31-36: स्याच्छब्दरहित्वेऽपि न चास्य निश्चयाभासत्वमुपनयरहितत्वात्। कथमुपनयाभावे स्याच्छब्दस्याभाव इति चेत्, स्याच्छब्दप्रधानत्वेनोपनयो हि व्यवहारस्य जनकत्वात्। यदा तु निश्चयनयेनोपनय: प्रलयं नीयते तदा निश्चय एव प्रकाशते।

प्रकाशित होता है।[5] अर्थ का व्यवहार असत् कल्पना का निवारण करने के लिए और सम्यग् रत्नत्रय की सिद्धि के लिए होता है। निश्चय को ग्रहण करते हुए भी अन्य के मत का निषेध नहीं करता।[1] अन्यत्र भेद के द्वारा उपचार होने से उपचार से स्यात् पद शब्द की अपेक्षा करता है। स्यात्कार का प्रयोग धर्मों में होता है, गुणों में नहीं।

'स्यात्' शब्द निपातपद है। वाक्यों में प्रयुक्त यह शब्द अनेकान्त द्योतक वस्तु के स्वरूप का विशेषण है। स्याद्वाद अर्थात् सर्वथा एकान्त का त्यागी होने से 'किंचित्' ऐसा अर्थ बताने वाला है। सप्तभङ्ग रूप नय की अपेक्षा वाला तथा हेय व उपादेय का भेद करने वाला है।[2] धर्मों के सद्‌भाव को द्योतन करने के लिए स्यात् शब्द का प्रयोग किया जाता है। स्यात् शब्द अनेकान्त का द्योतक होता है। इसके प्रयोग का प्रयोजन एकान्त का निषेध करना है। नियम का निषेध करना तथा सापेक्षता की सिद्धि करना स्याद्वाद का प्रयोजन है। अनन्त जीव पुनर्जन्म के चक्र में फँसे हुए हैं। मात्र उनका रूप बदलता रहता है। उनमें से जिन्होंने तपस्वी जीवन के माध्यम से स्वयं को मुक्त किया है वे सिद्धत्व को प्राप्त करते हैं। एक सापेक्ष दृष्टिकोण रखते हुए जैनाचार्यों ने कहा है कि आत्मा की प्रवृत्ति को दोनों स्थायी रूप से अन्तर्निहित पदार्थ के दृष्टि कोण से और अस्थाई रूप से इसके तरीकों और संशोधनों के दृष्टिकोण से, दोनों के रूप में समझाया है। सभी वास्तविकता में अनन्त गुण एवं तर्क हैं। सभी तर्क मात्र अपेक्षाकृत सत्य हो सकते हैं। जैन चिन्तकों ने संकीर्ण पक्षपातपूर्ण विचारों को दूर करने के बजाए व्यापक रूपरेखा के भीतर जैन विचारों को संदर्भित करने का प्रयास किया।

समन्तभद्र के अनुसार तत्त्व 7 कोटियों में पूर्ण होता है क्योंकि तत्त्व तो अनेकान्त रूप है,[3] एकान्त नहीं और अनेकान्त विरोधी दो धर्मो सत्-असत्, शाश्वत्-अशाश्वत्, एक-अनेक आदि के युगल के आश्रय से प्रकाश में आने वाले वस्तुगत 7 धर्मों का समुच्चय है।[4] परन्तु दृष्टा को सजग और समदृष्टि होना चाहिए। इसीलिए उन्होंने प्रत्येक भङ्ग के साथ स्यात् निपात पद लगाने का उपदेश दिया[5] और

---

1. न0 च0 श्रुत, 31-36: किमर्थं व्यवहारोऽसत्कल्पनानिवृत्त्यर्थं सद्रत्नत्रयसिध्यर्थं च। .... निश्चयं गुह्यन्नपि अन्ययोगव्यवछेदनं करोति।
2. युक्त0 43: तद्द्योतन स्याद् गुणतो निपातः।
3. युक्त्यानुशासन, 46: तत्त्वं त्वनेकान्तमशेषरूपम्।
   स्वयम्भू0 41: एकान्तदृष्टिप्रतिषेधि तत्त्वं प्रमाणसिद्धं तदतत्स्वभ्भावम्।
   युक्तय0, 32 : न सच्च नासच्च न दृष्टमेकमात्मान्तरं सर्वनिषेधागम्यम्। दृष्टं विमिश्रं तदुपाधिभेदात् स्वप्ने नैतत्त्वदृषे: परेषाम्।
4. युक्तयङ्क 45: विधिर्निषेधोऽभिलाप्यता च त्रिरेकशस्त्रिद्निश एक एव। त्रयो विकल्पास्तव सप्तधाऽमी स्याच्छब्दनेया: सकलेखर्थभेदे।
   स्वयम्भू0, 118: विधेयं वार्यं चानुभयमुभयं मिश्रमपि तत्। विशेषै: प्रत्येकं नियमविशयैशपरिमितै:।
सदन्योन्यापेक्षै: सकलभुवन: सकलभुवनज्येष्ठगुरूणा त्वया गीतं तत्त्वं बहुनयविवक्षेतरवशात्।।
5. आप्तमीमांसा, 103: वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यं प्रति विशेषणम्। स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात्तव केवलिनामपि।।
6. आप्तमीमांसा, 104: स्याद्वाद: सर्वथैकान्तत्यागात् किं वृत्तचिद्विधि:।

'स्यात्' का अर्थ कथंचित्'-किसी एक दृष्टि से या किसी एक अपेक्षा से बताया।[6] साथ ही उन्होंने प्रत्येक कोटि की निर्णयात्मकता को प्रकट करने के लिए प्रत्येक वाक्य के साथ 'एवकार' पद का प्रयोग भी निर्दिष्ट किया।[1] जिससे उस कोटि की वास्तविकता प्रामाणित हो, काल्पनिकता नहीं। तत्त्वप्रतिपादन की इन 7 कोटियों को उन्होंने एक नया नाम भी दिया वह है-भङ्गिनी प्रक्रिया-सप्तभङ्गी[2] अथवा सप्तभङ्ग नय।[3] समन्तभद्र की यह परिष्कृत सप्तभङ्गी-इस प्रकार प्रस्तुत हुई।

इस सप्तभङ्गी में प्रथम भङ्ग स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, तथा भाव की अपेक्षा से द्वितीय परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से, तृतीय दोनों की सम्मिलित अपेक्षाओं से, चतुर्थ दोनों (सत्त्व-असत्त्व) को एक साथ कह न सकने से, पंचम प्रथम व चतुर्थ के संयोग से, षष्ठ द्वितीय-चतुर्थ के संयोग से और सप्तम तृतीय और चतुर्थ के मिश्र रूप में विवक्षित है और प्रत्येक भङ्ग का प्रयोजन पृथक्-पृथक् है।[4] समन्तभद्र ने स्याद्वाद की तरह अद्वैत-द्वैतवाद शाश्वत्-अशाश्वतवाद, वक्तव्य-अवक्तव्यवाद, अपेक्षा-अनपेक्षावाद, हेतु-अहेतुवाद, विज्ञान-बहिरर्थवाद, दैव-पुरुषार्थवाद पाप-पुण्यवाद, बन्ध मोक्षकारणवाद-इन एकान्तवादों पर भी विचार प्रकट किया तथा उक्त प्रकार से उनमें भी सप्तभङ्गी (सप्त कोटियों) की योजना करके स्याद्वाद की स्थापना की।[5] इस तरह विचारकों को उन्होंने स्याद्वादी दृष्टि (तत्त्व विचार की पद्धति) दे कर तत्कालीन के विचार संघर्ष को मिटाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। साथ ही दर्शन के लिए जिन उपादनों की आवश्यकता होती है, उनका भी उन्होंने सृजन किया तथा अर्हत् दर्शन को अन्य दर्शनों के समकक्ष ही नहीं, उसे गौरवपूर्ण भी बनाया।

अर्हन् के तथा श्रुतकेवलियों के भी वाक्यों में प्रयुक्त होने वाला 'स्यात्' निपात (अव्यय) शब्द अर्थ के साथ सम्बद्ध होने से अनेकान्त का द्योतक[6] और गम्य बोधक (विवक्षित) का बोधक सूचक (वाचक) माना गया है अन्यथा अनेकान्त अर्थ की प्रतिपत्ति नहीं बनती। सत्-असत् नित्य-अनित्यादि सकल-सर्वथैकान्तों के प्रतिक्षेप लक्षण को अनेकान्त कहते हैं। अपने अपने वाक्य के परस्पर सापेक्ष पदों के तथा वाक्यान्तर के पदों से निरपेक्ष[7] समुदाय का नाम वाक्य है।

वस्तु तत्-अतत् रूप है। दृष्टि-भेद के साथ अविनाभाव-सम्बन्ध को लिए हुए सत्-असत्, नित्य-अनित्यादि अनेकान्तरूप है, जो वाक्य (वाणी) उसे सर्वथा तत्रूप-सत्

1. युक्तय0 41: यदेवकारोपहितं पदं तदस्वार्थतः स्वार्थमवच्छिनत्ति
   युक्तयं 42: अनुक्तुल्यं यदनेवकारं व्यावृत्त्यभावान्नियमद्वयेऽपि।
2. आप्तमीमांसा, 23: प्रक्रियां भाङ्गिनीमेनां नयैनयविशारदः।
3. आप्तमीमांसा, 104: सप्तभङ्गनयापेक्षः
4. द्र0 आप्त0, 15,16,21
5. द्र0, आप्त0 23,113
6. द्र0, आप्तमीमांसा, 103:
7. अष्टसहस्री, पृ0 285, टिप्पणी: वाक्यान्तरगतपदनिपरेक्षः।

नित्यादिरूप ही प्रतिपादन करता है, उसके प्रतिपक्षी अविनाभावी धर्म को गौण किए हुए न हो कर उसका विरोधक है, वह सत्य नहीं होता। तब ऐसे मिथ्या-वाक्यों से तत्त्वार्थ की, यथार्थ वस्तुस्वरूप की, देशना नहीं बन सकती। वाक्य विधिरूप हो या निषेध रूप, सभी विधि तथा प्रतिषेध दोनों रूप वस्तु का प्रतिपादन करते हैं। अन्तर मात्र इतना है कि विधि-वाक्य के द्वारा विधि का कथन मुख्य रूप से और प्रतिषेध का कथन गौण रूप से तथा प्रतिषेध-वाक्य के द्वारा प्रतिषेध का कथन मुख्य रूप से और विधि का कथन गौण रूप से किया जाता है। यही यथार्थ तत्त्व-देशना है।[1]

अनेकान्तवाद के ये 7 नय के माध्यम से वास्तविकता के विषय में पूर्ण निर्णय लिया जा सकता है। एक विशेष दृष्टिकोण को नय या आंशिक दृष्टिकोण कहा जाता है। एक नय केवल समग्रता का एक भाग प्रकट करता है। स्याद्वाद का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आप्तमीमांसा में कहा गया है कि स्यात् शब्द सर्वथा एकान्त का त्यागी होने से 'किं'शब्द निष्पन्न चित्-प्रकार के रूप में 'कथंचित्, कथंचन' आदि का वाचक है और इसलिए कंथचित् आदि शब्द स्याद्वाद के पर्याय-नाम हैं। यह स्याद्वाद सप्तभङ्गों और नयों की अपेक्षा को लिए रहता है तथा हेय-उपादेय का विशेष भेदक होता है। स्याद्वाद के बिना हेय और उपादेय की विशेष रूप से व्यवस्था नहीं बनती।[2]

स्याद्वाद और केवल ज्ञान दोनों जीवादि सब तत्त्वों के प्रकाशक हैं। दोनों के प्रकाशन में प्रत्यक्ष और परोक्ष का भेद है। केवलज्ञान जीव, अजीव, आस्रव, विधि, संवर, निर्जरा, मोक्ष- इन सात तत्त्वों का प्रत्यक्षत: एवं युगपत् प्रकाशक है और स्याद्वाद रूप श्रुतज्ञान इन पदार्थो का अप्रत्यक्षत: क्रमश: प्रकाशक है। इन दोनों ज्ञानों में से जो किसी भी ज्ञान के द्वारा प्रकाशित अथवा उसका वाच्य नहीं, वह अवस्तु होती है।[3] वास्तव में वही वाक्य सत्य है, जिसके द्वारा अपने अभिप्रेत अर्थविशेष की प्राप्ति होती है और ऐसा वाक्य 'स्यात्' शब्द से युक्त ही सम्भव है और उसी से सत्य अर्थात् यथार्थ अर्थ की पहचान होती है, क्योंकि वह लोगों को अभिप्रेत अर्थ विशेष की प्राप्ति नहीं होती। यही स्याद्वाद और अन्यवादों में विशेष अन्तर है। जो वस्तु अनेकान्त रूप है वही सापेक्ष दृष्टि से एकान्त भी है। श्रुतज्ञान की अपेक्षा अनेकान्त रूप है और नय की अपेक्षा एकान्त रूप है। बिना अपेक्षा के वस्तु का स्वरूप नहीं देखा जा सकता।[4] वस्तु एक नय से देखने पर एक प्रकार दिखाई देती है और दूसरी नय देखने पर दूसरी प्रकार। असम्भव दोष के आने से इस प्रकार कहना ठीक नहीं है कि केवल

---

1. आप्तमीमांसा, 110: तदतद्वस्तु वागेषा तदेवेत्यनुशासती। न सत्या स्यान्मृषा-वाक्यै: कथं तत्त्वार्थ-देशना।।
2. आप्तमीमांसा, 104: स्याद्वाद: सर्वथैकान्त-त्यागात् किं वृत्तचिद्विधि:। सप्तभपङ्ग-नयापेक्षो हेयाऽऽदेय-विशेषक:!!
3. आप्तमीमांसा, 105: स्याद्वाद-केवलज्ञाने सर्वतत्त्व-प्रकाशने। भेद: साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्।।
4. का0 अ0 261: जं वत्थु अणेयंतं एयंतं तं पि होदि सविपेक्खं। सुय-णाणेण णएहि य णिरवैक्खं दीसदेणेव

निश्चयनय से काम चल जाएगा क्योंकि निश्चय से कोई भी नय निरपेक्ष नहीं हैं परन्तु विधि होने में प्रतिषेध और प्रतिषेध होने में विधि की प्रसिद्धि है।[1] वह वस्तु भेदाभेद ज्ञान का विषय है और अनेक तथा एक रूप है और वह वस्तु को भेद-अभेद रूप से ग्रहण करने वाला ज्ञान ही सत्य है जो लोग इनमें से एक को ही सत्य मान कर दूसरे में उपचार का व्यवहार करते हैं, वह मिथ्या है, क्योंकि दोनों में से एक का अभाव मानने पर दूसरे का भी अभाव हो जाता है। दोनों का अभाव हो जाने से वस्तु तत्त्व अनुपाख्य निःस्वभाव हो जाता है।[2] एक नय से ही सत्ता सिद्ध नहीं हो जाती क्योंकि वस्तु द्रव्यार्थिक और पयार्याथिंक इन दोनों में विषयमय है। इनमें से किसी एक का लोप होने पर दूसरे नय का भी लोप हो जाएगा।[3]

पदार्थ अनेक धर्मो से युक्त होता है, तो भी उन्हें एक धर्म युक्त कहा जाता है, क्योंकि जहाँ एक धर्म की विवक्षा करते हैं वहाँ उसी धर्म को कहते हैं, शेष धर्मों की विवक्षा नहीं कर सकते।[4] अनेकान्त में भी सप्तभङ्गी की योजना होती है। यथा- स्यादेकान्तः, स्यादनेकान्त इत्यादि, क्योंकि यदि अनेकान्त अनेकान्त ही हो तो एकान्त का अभाव होने से अनेकान्त का अभाव हो जाएगा और यदि एकान्त ही हो तो उसके अविनाभावि शेष धर्मों का लोप होने से होने से सब लोप हो जाएगा।[5]

सम्यगेकान्त और सम्यगनेकान्त का आश्रय ले कर प्रमाण तथा नय के भेद की योजना से किसी अपेक्षा से एकान्त, किसी अपेक्षा से अनेकान्त आदि की रीति से सप्तभङ्गी की योजना करनी चाहिए। उसमें नय की योजना से एकान्त पक्ष सिद्ध होता है, क्योंकि नय एक धर्म को विषय करता है और प्रमाण की योजना से अनेकान्त सिद्ध होता है, क्योंकि प्रमाण सम्पूर्ण धर्मों को विषय करता है।[6]

त्रिकालवर्ती नयों-उपनयों के एकान्त- विषयों का पर्याय विशेषों का-जो अपृथक्स्वभाव (तादात्म्य) सम्बन्ध को लिए हुए समुच्चय समूह है, वह द्रव्य-वस्तु

1. प० धा०, पृ० 655: नैवमसम्भवदोषायतो न कश्चिन्नयो हि निरपेक्षः। सति च विधौप्रतिषेधः प्रतिषेधे सति विधेः प्रसिद्धत्वात्।
2. स्व० स्तो०, 22: अनेकमेक च तदेव तत्त्वं तत्त्वं भेदान्वयज्ञामिदं हि सत्यम्। मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे तच्छेषलोपोऽपि ततोऽनुपारूयम्
3. 35 पं० धा०, पृ० 19: तन्नयतो .... द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयात्मकं वस्तु। अन्यतरस्य विलोप शेषस्यापीह लोप इति दोषः।
4. कार्ति० अ०, 264: णाणाधाम्मयुद्ध पि य, एय धाम्मं पि वुच्चदेअत्थं। तस्सेय विवक्खादो णत्थि विवक्खादा हु सेसाणं।
5. राज० वा०, 16: अनेकान्ते तद्भावादव्याप्तिरिति चेतः नः तत्रापि तदुपपत्तेः। स्यादेकान्तः स्यादनेकान्तः इति तत्कथमिति चेतः।
6. स० भ० त०, 75 : सम्यगेकान्तसम्यगनेकान्तावाश्रित्य प्रमाण नयार्पणाभेदात् स्यादेकान्तः स्यादनेकान्तः सप्तभङ्गी योज्या। तत्र नयार्पणादेकान्तो भवति , एक धार्मगोचरत्वान्न यस्य। प्रमाणावदनेकान्तो भवति अशेषधार्मनिश्चयात्मकत्वात्पमाणस्य ।

है और वह अनेक भेद रूप है।[1] निरपेक्ष और सापेक्ष नयों की स्थिति वर्णित करते हुए आचार्य समन्तभद्र ने कहा है कि जो नय प्रतिपक्षी धर्म के सर्वथा निराकरण रूप हैं, निरपेक्ष होते हैं, वे ही मिथ्यानय अर्थात् दुर्नय होते हैं। सापेक्ष नय वे होते हैं जो कि प्रतिपक्षी धर्म की उपेक्षा अथवा उसे गौण किए होते हैं, वे मिथ्या न हो कर सम्यक् नय होते हैं, उनके विषय अर्थ क्रियाकारी होते हैं और इसलिए उनके समूह के वस्तुपना सुघटित है।[2]

अभिप्रेत-विशेष की प्राप्ति का सच्चा साधन बताते हुए कहा है कि सामान्य-विशेषात्मक वस्तु का जब मुख्यतः सामान्य रूप से कथन किया जाता है तब उसका विशेष रूप गौण हो कर वक्ता के अभिप्राय में स्थित होता है, जिसे साथ में प्रयुक्त 'स्यात्' शब्द व्यक्त करता है। इसलिए स्यात्कार अभिप्रेत विशेष को जानने का सच्चा साधन एवं मार्ग है। अभिप्रेत वही होता है जो स्वरूपादि, स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के द्वारा सत् होता है- पररूपादि के द्वारा सत् नहीं।[3] स्यात्कार का प्रयोग धर्मों में होता है, गुणों में नही।[4] स्याद्वाद प्रक्रिया आपेक्षिक धर्मों में प्रवर्तती है। इसीलिए अर्हत् ने अनेकान्त रूपी अमृत को पीकर प्रत्येक वस्तु को कथंचित् अनित्य, कथंचित् नित्य, कथंचित् सामान्य, कथंचित् विशेष, कथंचित् वाच्य, कथंचित् अवाच्य, कथंचित् सत् और कथंचित् असत् का प्रतिपादन किया है।[4]

वास्तविक रूप से अस्तित्व, नास्तित्व आदि धर्मों की एक वस्तु में इस प्रकार अभेद वृत्ति का होना असम्भव है तो अब काल, आत्मरूप आदि करके भिन्न-भिन्न स्वरूप हो रहे धर्मों का अभेद रूप से उपचार किया जाता है। इस कारण इन अभेदवृत्ति और अभेदोपचार से एक शब्द करके ग्रहण किए गए अनन्त धर्मात्मक एक जीव आदि वस्तु का कथन किया गया है। उन अनेक धर्मों का द्योतक स्यात्कार निपात सम्यक् प्रकार व्यवस्थित हो रहा है। 'स्यात्' शब्द से भी सामान्य रूप से अनेक धर्मों का द्योतन हो कर ज्ञान हो जाता है।[5] स्यात् शब्द दो हैं- एकक्रियावाचक व दूसरा अनेकान्त वाचक। उक्त 'स्यात' शब्द सर्वथा नियम को छोड़कर सर्वत्र अर्थ की प्ररूपणा करने वाला है, क्योंकि वह प्रमाण का अनुसरण करता है[6] जिस प्रकार लोक में सिद्ध किया गया मन्त्र एक तथा अनेक अर्थों का साधक जाना जाता है।[1] वस्तु जिस

1. आप्तमीमांसा, 107: नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः। अविभ्राड्भावसम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकध।।
2. आप्तमीमांसा, 108: निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत।
3. आप्तमीमांसा, 112: सामान्यवाग्विशेषे चेन्न शब्दार्थों मृषा हि सा अभिप्रेत-विशेषाप्तेः स्यात्कारः सत्य-लाञ्छनः।।
4. श्लो0 वा0 2, भाषा 1.6.56.493.13
5. स्या0 म0 25, 295: स्यान्निशि नित्यं सदृशं विरूपं वाच्यं न वाच्यं सदसत्तसेव। विपश्चित्तां नाथ निपीततत्वसुधोद्गतोद्गार परम्परेयम्।
6. 44 श्लो0 वा0 2/1/6/55/45: स्वाच्छब्दादप्यनेकान्तसामान्यस्यावबोधने।

स्वरूप से है उसी प्रकार पर स्वरूप से भी है, इसी प्रकार की आपत्ति का निवारण करना स्यात् शब्द का प्रयोजन है, जिस प्रकार द्रव्य रूप से नित्य है उसी प्रकार पर्याय रूप से नित्य न हो यह स्यात् शब्द का प्रयोजन है।[2] यथावस्थित पदार्थ का प्रतिपादन करने का अन्य कोई उपाय नहीं है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु में अनन्त स्वभाव है। अतएव सम्पूर्ण नय स्वरूप स्याद्वाद के बिना किसी भी वस्तु का यथार्थरूप से प्रतिपादन नहीं किया जा सकता।[3]

अस्ति इत्यादि रूप जो विधेय है, मन के अभिप्राय पूर्वक जिसका विधान किया जाता है किसी के भाग्यादि वश नहीं और ईप्सित् अर्थक्रिया का कारण है कि वह प्रतिषेध्य के नास्तित्वादि के साथ अविरोधरूप है जो नास्तित्वादि के साथ अविरोधरूप नहीं वह ईप्सित अर्थक्रिया का कारण भी नहीं हो सकता क्योंकि विधि प्रतिषेध के परस्पर अविनाभाव-सम्बन्ध है, विधि के बिना प्रतिषेध का और प्रतिषेध के बिना विधि का अस्तित्व नहीं बनता और जिस प्रकार विधेय प्रतिषेध्य का अविरोधी ईप्सित अर्थक्रिया का अंगकारण सिद्ध है उसी प्रकार वस्तु का आदेय-हेयपना है, अन्यथा नहीं, क्योंकि विधेय का एकान्त होने पर किसी के हेयत्व का विरोध होता है, स्याद्वादी के अभिप्रायानुसार सर्वथा विधेय ही प्रतिसेध्य नहीं होता, कथंचित् विधि प्रतिषेध्य के तादात्म्य माना गया है। अत: विधेय प्रतिषेधात्मक विशेष के कारण सप्तभङ्गी के समाश्रय से स्याद्वाद प्रक्रियमाण होता है। इस प्रकार स्याद्वाद की सर्वयुक्ति ही सम्यक् स्थिति है।

. अनेकान्तवाद एक जैन सिद्धान्त है जो प्रत्येक पक्ष कई दृष्टिकोणों, वार्त्ता और वार्त्ता के सत्य को स्वीकार करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। जैन धार्म वास्तव में अहिंसा को सर्वोच्च नैतिक मूल्य के रूप में सिखाता है। अनेकान्तवाद का यह आध्यात्मिक सिद्धान्त और मुक्ति की अपनी विशिष्ट तपस्या के लिए एक दार्शनिक पद्धति है।

---

1. धा0, 12/4, 2,9,2/295/10: सिया सहा दोण्णि एक्को किरियाए वाययो, अवरो णइवादियो। सव्वहाणियमपरिहारेण सो सव्वस्थ परूबओ पमाणाणुसारित्तादो।
2. न0 च0 वृ0 251 पर उद्धृत सिद्धमन्तो यथा लोके एकोऽनेकार्थदायक:। स्याच्छब्दोऽपि तथा ज्ञेय एकोखनेकार्थसाधक:।
3. न0 च0 श्रुत, 65: यथा स्वरूपेणास्तित्वं तथा पररूपेणाप्यस्तित्वं माभूदिति स्याच्छब्द:। यथा द्रव्यरूपेण नित्यत्वं तथा पर्याय-रूपेणैव नित्यत्वं तथा पर्यायरूपेणैव नित्यत्वं माभूदिति स्याच्छब्द:।
4. स्या0 य0, 19/254/3: यथावस्थितपदार्थप्रतिपादनोपयिकं नान्यदिति ज्ञापनार्थम्। अनन्तधार्मकस्य सर्वस्य वस्तुन: सर्वनयात्मकेन स्याद्वादेन बिना यथावद्गृहीतुमशक्यत्वात्।

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(राष्ट्रियमूल्याङ्कन-प्रत्यायनपरिषदा 'ए' श्रेण्या प्रत्यायितः, मानितविश्वविद्यालयः)
नवदेहली-16